Title: Propagation and value addition of *Aloe vera* (*Aloe vera.* Var. *barbadensis*).

Background: Aloe (*Aloe vera*) is an important medicinal plant which is indigenous to Africa and Mediterranean countries. This is a hardy perennial tropical plant hich can be cultivated in drought areas. Locally, it is known as Ghrit Kumari. It is used in medicinal and cosmetic industries besides being sold in the form of gel and juice in the market. It can be planted in dry region having good drainage system. The propagation of the plant is done through the lateral propagules having 4-5 leaves about 30 cm size.

Scheme: The scheme includes identification of areas of District Mandi, Bilaspur,Kullu and Shimla. Required soil pH of 6.5 to 8.5 is suitable for Aloe vera. CIGs of interested families will be formed to take up its propagation on their private land or village common land. Based on the performance of plants after propagation, gel extraction unit shall be installed to provide appropriate marketing and post harvest management to the groups for income generation. The plants are harvested after 10-12 months of planting. Expected yield of leaves is about 20 tons per hectare. Marketing will be carried out by the marketing committee set up at Cluster level of VFDS under the aegis of Manager (Marketing) from PMU.

Activities: The suitable area has been ear-marked at Ropri and Chamokha villages, **Suket** Range of **Suket FD** (Distt. Mandi) under the batch-1 enlisted and raised VFDS. In both of these villages, women groups comprising of 40 members each are interested to carry out this activity as an enterprise. These groups are interested to raise plantation in their barren land comprising of about 1 Ha. They shall be provided planting material during the month of June-July for direct plantation in the field in the first year and the propagules produced through mother plant shall be employed as planting material for subsequent

years. About 40,000 plant propagules are required in the first year for one Ha land.

Costs involved: Estimated projections have been worked out as below:

No.	Activities	Units	Quantity	Norms	Cost
1	Constitution of CIG from VFDS	1			
2	Planting material cost	40,000	1 Hac.	3.00	**1,20,000**
3	Agricultural Implements	LS		LS	**7,000**
4	Preparation of field	LS		LS	**50,000**
5	Manure cost/ NPK (Recommended for commercial cultivation)	LS		LS	**20,000**
6	Carriage of manure	LS		LS	**5,000**
7	Planting & Initial Watering Cost	LS		LS	**50,000**
8	Peeling machine	1			**2,00,000**
9	Bottling unit	1			**5,00,000**
	Total				**9,52,000**

Financial Returns: Total expected yield will be 20 tons/Ha. *Aloe vera* leaves are peeled and gel is extracted with the help of a peeling machine which is stored in a food grade plastic container. The estimated gel recovery depending upon the leaf size and quality comes to about 40-50%. The gel can be stored for more than 6 months in the room temperature without deterring its quality and there is no threat of distress selling. The economics of the *Aloe vera* gel production/ha can be worked out as under:

1. Estimated production of gel/ha@ 50% = 10 tons gel
2. Cost of Gel in the open market = Rs. 50-200/kg

If calculated at the lowest cost, profit=10000x50= Rs. 500000/Ha which would further extend to approx. Rs. 15 Lacs/Ha over a period of 3 years.

Cost Benefit Analysis: The benefit : cost = 15,00,000/9,52,000 = 1.57 which is quite sustainable.

Sustainability: The sustainability of the activity will depend on the motivation of the people after the project period. If they adopt the practice of cultivation of this plant on their cultivable land, fallow land and village common lands, the increased volume of area and subsequent production would further augur well for the sustainability of this model.

The project will be outsourced by floating RFP since it involves village communities having private land.

सिंचाई एवं गुड़ाई :

असिंचित भूमि में रोपाई के पश्चात् सप्ताह में दो बार जब तक पौधे स्थापित नहीं हो जाते, सिंचाई करनी चाहिए। जब पौधे बड़े हो जाएं तो सिंचाई की ज्यादा आवश्यकत्ता नहीं होती है। शुष्क भूमि में सिंचाई की आवश्यकता रहती है।

अतः माह में कम से कम एक बार सिंचाई करनी चाहिए। जिस भूमि में इसकी खेती की जाए वहां पानी की निकासी का ध्यान रखना अति आवश्यक होता है नहीं तो पौधे मर जाते हैं। खरपतवार नियन्त्रण के लिए ग्वारपाठे के अतिरिक्त अन्य छोटे–छोटे पौधे निकालते रहना चाहिए तथा हल्की गुड़ाई कर देनी चाहिए।

फसल की कटाई एवं खरपतवार :

पौधे लगाने के एक वर्ष बाद हर तीन माह में प्रत्येक पौधे की अन्दर की 3–4 पत्तियों को छोड़कर शेष सभी पत्तियों को तेज धार वाली दराटी या चाकू से काट लेना चाहिए। बचे हुए पोधों में बसन्त ऋतु में फिर से नई पत्तियां आनी शुरू हो जाती हैं।

उपज :

ग्वारपाठा की ताजी पत्तियों की उपज लगभग 150–200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपलब्ध होती है। यह उपज 2 से 5 वर्ष की अवधि तक ली जा सकती हैं तथा 5 वर्ष पश्चात् पौधों को दोबारा लगाना पडता है।

अधिक जानकारी हेतू इस पते पर संम्पर्क करें:–

मुख्य परियोजना निदेशक

JICA सहायता प्राप्त

'हिमाचल प्रदेश वन पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन एवं आजीविका सुधार परियोजना'

पॉटरस हिल, समरहिल, शिमला–5 हिमाचल प्रदेश

दूरभाषः 0177–2832217

ई–मेलः cpdjica2018hpfd@gmail.com, himjadibuticell@gmail.com

घृतकुमारी

(*Aloe vera syn. A. barbadensis*)

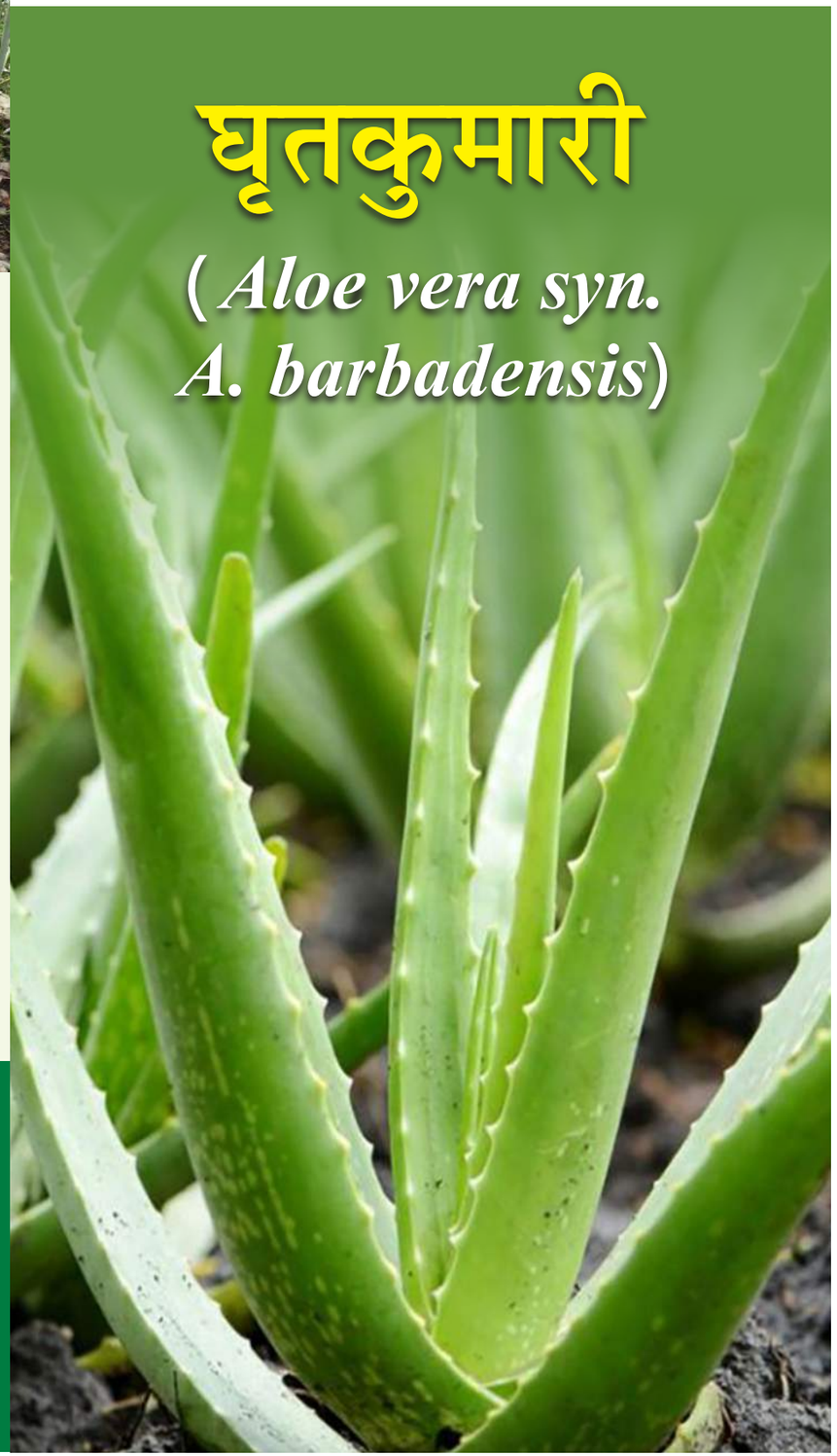

वानस्पतिक नाम : एलो वेरा / एलो बारबाडेन्सिस
कुल : लिलिएसी (Liliaceae)
प्रचलित नाम : घीक्वार, कुमारी, ग्वारपाठा, घृतकुमारी, क्वारपाठा

घृतकुमारी के पौधे पूर्वी एवं दक्षिणी अफ्रीका, केनरी द्वीप तथा स्पेन में प्राकृतिक रूप से पाए जाते हैं। वहाँ से यह पौधा मेडीटिरेनियन क्षेत्र से वेस्टइण्डिज, भारत, चीन और अन्य देशों में 16वीं शताब्दी में विस्तृत हुआ । इस पौधे की खेती दक्षिणी अमेरिका के कुछ भागों तथा भारतवर्ष में की जाने लगी है।

हिमाचल प्रदेश में यह पौधा 1500 मीटर की ऊँचाई तक कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर, मण्डी, ऊना, सोलन, सिरमौर व शिमला में पाया जाता है।

ग्वारपाठा का पौधा 30 से.मी. से 60 से.मी. तक ऊँचा, बहुवर्षीय होता है। यह पौधा लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में पाया जाता है। इसके पत्ते मांसल, भालाकार, डेढ़ फुट तक लम्बे तथा 3–4 इंच चौड़े एवं छोटे –छोटे कांटेयुक्त होते हैं। इसके पौधे पुराने हो जाने पर इसके मध्य भाग से पुष्प दण्ड निकलते हैं जिस पर लाल व हल्के पीले रंग के फूल या फलियाँ आती हैं जिन्हें गन्दल भी कहते हैं। इसके पत्ते किनारे से थोड़े मुड़े हुए होते हैं तथा पौधों पर पुष्प आने का समय फरवरी–मार्च होता है। इसके पत्तों में व्याप्त लिसलिसा द्रव्य औषधीय रूप में काम आता है।

रासायनिक तत्व :

ग्वारपाठा के पत्तों में 94 प्रतिशत पानी एवं शेष 6 प्रतिशत भाग में एमिनो एसिडज व कार्बोहाइड्रेटस होते हैं। इसके पत्तों के रस में एलोइन नामक ग्लुकोसाइड समूह होता है तथा यही मुख्यः क्रियाशील तत्व होता है। इसका मुख्य घटक बारवेलाईन होता है। इसके अतिरिक्त एलोइन, बी बारबालोइन तथा आइसोबारबेलोइन तत्व भी होते हैं। साथ ही इसमें एलोइमोडिन रॉल (Resin), गेलिक एसिड तथा एक सुगन्धित तेल भी पाया जाता है।

औषधीय महत्त्व :

ग्वारपाठे का रस अथवा एलुआ तैयार करके प्रायः आयुर्वेदिक औषधियाँ बनती हैं जिनका सम्बन्ध गुल्म, यकृत, प्लीहा वृद्धि, कफज्वर जैसी बिमारीयों से होता है। ग्वारपाठे के सहयोग से निर्मित विशिष्ट योग चन्द्रोदय रस, मकरधवज, पूर्णचन्द्र रस, मुक्ता पंचामृत, उन्माद गुजाकुश रस, कुमार कल्याण रस, प्रदरान्तक रस, शिला सिन्दूर आदि हैं।

ग्वारपाठे का उपयोग चर्मरोग, अग्निदग्धा, कफ विकार, खांसी, महिला सम्बन्धी रोगों, उदरशूल, बवासीर, कब्ज, यकृत सूजन आदि में किया जाता है। ग्वारपाठे के ताजे पत्तों का गुद्धा रवन्स किरण व विकिरण द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावों को दूर करता है। सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में ग्वारपाठे का उपयोग तेजी से बढ़ता जा रहा है, विशेष रूप से चेहरे की सुन्दरता बढ़ाने के लिए इससे अनेक उत्पाद बनाए जा रहे हैं जिससे इसकी मांग बढ़ती जा रही है।

ग्वारपाठा की खेती

जलवायु एवं मृदा :

ग्वारपाठा कश्मीर से कन्याकुमारी तक पाया जाता है। इसके लिए गर्म, नमी युक्त व शुश्क जलवायु जिसमें 150–200 सें. मी. वार्षिक वर्षा होती हो, इसके जीवनकाल के लिए उपयुक्त रहता है परन्तु बहुत ज्यादा शुष्क क्षेत्रों में थोड़ी सिंचाई की आवश्यकता रहती है।

भूमि की तैयारी :

यद्यपि ग्वारपाठा की खेती सिंचित एवं असिंचित दोनों तरह की भूमि पर की जा सकती है परन्तु इसकी खेती अगर असिंचित क्षेत्रों में जहां पानी ठहरने की समस्या न हो तो यह बहुत उपयुक्त रहती है। पानी के निकास की उचित व्यवस्था होना बहुत आवश्यक है।

रोपण :

ग्वारपाठा का प्रवर्धन इसके कन्दों (Bulbils) द्वारा किया जाता है। इसके छोटे–छोटे पौधों का रोपण जून–जुलाई माह में किया जाता है। इसके लिए पुराने पौधों की जडों के पास ही कुछ नए छोटे–2 पौधे निकलने लगते हैं। वर्षा ऋतु में इन पोधों को जड सहित बड़े खेतों में लाइनों में 60X60 से.मी. की दूरी पर लगा दिया जाता है तथा यही इनका प्लोटिंग मेटिरियल कहलाता है।